श्री महाबीर प्रसाद जैन

बनाम

श्री गंगा सिंह

अक्टुबर 5, 1999

[एम. श्रीनिवासन, ए.पी. मिश्रा और एन. संतोष हेगडे जे.जे.]

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम. 1963 धारा.6

वाद - किरायेदारी परिसर के कब्जे के लिए डिक्री प्रदान.विचारणीय न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर कि प्रतिवादी की किरायेदारी को प्रमाणित नहीं किया गया, अभिलेख पर साक्ष्यो पर विचार किए बिना कब्जे के लिए डिक्री प्रदान करना - पुर्नवलोकन पर, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी की किरायेदार के रूप में स्तर की जांच किए बिना विचारणीय न्यायालय की डिक्री की पुष्टि की - मान्यता - निर्धारित किया, विचारणीय न्यायालय ने अभिलेख पर साक्ष्य पर विचार किए बिना गलत पूर्वानुमान पर कब्जे के लिए डिक्री देकर गंभीर त्रुटि की उच्च न्यायालय उक्त परिप्रेक्ष्य में मामले की जांच किए बिना इस तरह के डिक्री की पुष्टि करके अपने कर्तव्य में विफल रहा. सिविल प्रक्रिया कोड, 1908 - एस.115.

दावा - किरायेदारी परिसर के कब्जे के लिए डिक्री - प्रदान - किसी भी अवैध निर्माण को हटाने के संबंध में कोई अनुतोष नहीं मांगा गया - हालांकि, विचारणीय न्यायालय ने अपीलार्थी को वाद परिसर में उसके

द्वारा किये गए निर्माण को हटाने को निर्देश दिया :- मान्यता - निर्धारित किया कि ऐसा अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता क्योंकि यह वाद में प्रार्थना के दायरे से परे है। उच्च न्यायालय ने इस तरह के अनुतोष की पुष्टि करेन में त्रुटि की है।

परिसीमा - किरायेदारी परिसर के कब्जे के लिए दावा विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित डिक्री पुनरीक्षण याचिका - याचिका में केवल वाद परिसीमा वर्जित होने का आक्षेप उठाया गया - उच्च न्यायालय पुनरीक्षण याचिका खारिज की गई मान्यता निर्धारित किया कि - परिसीमा आक्षेप पर विचार करने के उद्धेश्य से इस बात पर विचार करना अत्यंत आवष्यक है कि क्या प्रतिवादी किराएदारी परिसर के अनन्य कब्जे में है या नहीं - उच्च न्यायालय को पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने में न्यायसंगत नहीं ठहराया।

नगरपालिकाएं - अनधिकृत निर्माण.चक्रवृद्व शुल्क निर्धारित किया गया कि चक्रवृद्वि शुल्क की गणना केवल उन अनाधिकृत निर्माण क्षेत्र के आधार पर की जा सकती है जो अनाधिकृत निर्माण पूर्ण किया गया है।

प्रतिवादी ने स्थायी निषेधाज्ञा को एक दावा अपिलार्थी एवं नगर निगम के विरूद्व दायर कियाए जिससे उनके द्वारा प्रतिवादी को टक दुकान से बेदखल करने से रोका जाये।

विचारणीय न्यायालय द्वारा ऐड इन्टरिम निषेधाज्ञा प्रदान की गई। प्रकरण के गुण, अवगुण पर गये बिना प्रतिवादी के आवेदन पर उक्त टक्स

दुकान में बिजली आपूर्ति की पुनर्स्थापना को अतिरिक्त किराया नियंत्रक द्वारा स्वीकृत किया गया। तदोपरान्त, प्रतिवादी ने परिसर के कब्जे के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के तहत दूसरा दावा दायर किया जो कि इस आधार पर किया कि वह अपिलार्थी का पूर्ववर्ती के हित में एक किरायेदार था और बाद में अपीलार्थी द्वारा वाद संपति की खरीद पर, उसके अधीन एक किरायेदार है। विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि प्रत्यर्थी को अपीलार्थी के पूर्ववर्ती के हित द्वारा किरायेदार के रूप में शामिल नहीं किया गया था, प्रतिवादी के पक्ष में दावा को डिक्री करते हुए निर्धारित किया कि उसे वाद परिसर से बेदखल कर दिया गया था। विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को उक्त परिसर में उसके द्वारा लगाए गए निर्माण को हटाने का निर्देश दिया। पुनरीक्षण पर, उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि याचिका में एकमात्र परिसीमा द्वारा वर्जित होने का उठाया गया आक्षेप पोषणीय नहीं था। इसलिए वर्तमान अपील।

अपीलार्थी की ओर से, यह तर्क दिया गया कि एक बार आक्षेप प्रतिवादी के विरूद्व जब यह तय हो गया है कि प्रतिवादी उक्त सम्पति पर अपिलार्थी के पूर्ववर्ती के हित में आधार पर किरायेदार है, तो न्यायालय को यह मानना चाहिए था कि प्रतिवादी कभी भी उक्त संपति पर किरायेदार नहीं हो सकता था और इसके परिणामस्वरूप वह कभी उक्त सम्पति के कब्जे में भी नहीं रहा। प्रतिवादी को अपीलार्थी का सेवक या

अभिकर्ता के रूप् में बेदखली कर 1984 में पूरा किया गया था और दावा 1986 में दायर किया गया था, जो कि स्पष्ट रूप से परिसीमा द्वारा वर्जित था, कि जब प्रतिवादी ने पहले निषेधाज्ञा के लिए दावा पहले दायर किया था तो कब्जा के लिए दूसरा दावा दायर करने को कोई स्पष्टीकरण प्रतिवादी ने नहीं दिया है और पहले मुकदमे में वादी के प्रथम दावे और दूसरे दावे के कथनों के बीच भौतिक विसंगतियों को विचारणीय न्यायालय द्वारा पूरी तरह से अनदेखा और नजरअंदाज कर दिया गया है। अपीलों को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने निर्धारित किया गयाः

1.1 विचारणीय न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मुख्य साक्ष्यों पर विचार किये बिना विषिष्ट अनुतोष कि डिक्री को प्रदान कर गम्भीर गलती की है। पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय अपने कर्तव्य में विफल रहा जब उसने इस पहलू की पूरी तरह से अनदेखी करके निचली अदालत के फैसले की पुष्टि की कि क्या प्रतिवादी अपीलार्थी का किरायेदार था जैसा कि दावा किया गया था। [418-एफ; जी; एच]

1.2 विचारणीय न्यायालय को प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किरायेदारी के दावे के पूर्ण रूप से विरूद्ध जाते हुए यह विचार करा चाहिये था कि क्या अपीलार्थी द्वारा उठाया गया आक्षेप सत्य है या नहीं। विचारणीय न्यायालय को प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किरायेदारी के दावे के पूर्ण रूप से विरूद्व जाते हुए यह विचार करना चाहिये था कि क्या अपिलार्थी द्वारा उठाया गया आपेक्ष सत्य है या यह अपीलार्थी का विशिष्ट मामला था कि प्रतिवादी

कभी भी उसके अधीन या उसके पूर्ववर्ती के हित के अधीन किरायेदार नहीं था और वह केवल अपने भाई के माध्यम से दैनिक मजदूरी पर पान आदि बेचने में लगे हुए थे। अपीलार्थी का इस विषिष्ट तर्क का समर्थन उसके अपने साक्ष्य और उसके भाई के साक्ष्य द्वारा किया गया था। विचारणीय न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में कहीं भी तर्क की सत्यता और साक्ष्य की स्वीकार्यता पर विचार नहीं किया है। जबकि उन्हें तथ्यों के कथन के हिस्से के रूप में संदर्भित किया गया है। यदि न्यायालय ने उक्त तर्क के संबंध में अपीलार्थी के पक्ष में पाया होता तो प्रतिवादी द्वारा विनिर्दिष्ट अनुतोष की अधिनियम की धारा 6 के तहत दायर किया गया दावा पोषणीय नहीं होता क्योंकि वह परिसर पर कब्जा होने के तर्क को उठा नहीं सकता था।सभी उद्धेश्यों के लिये किसी किरायेदार या अभिकर्ता का कब्जा उसके स्वामी या प्रिसिंपल का होता है। और पहले वाला ऐसे कब्जे के आधार पर दुसरे के खिलाफ मुकदमा नहीं कर सकता है। [424-ई; एफ; 425-ए; बी]

दक्षिणी रोडेवेज लि. मदुराई बनाम एस.एम. क्रष्णन, [1989] 4 एससीसी 603, संदर्भित किया।

2. विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित की गई डिक्री जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है वाद में प्रार्थना और विनिर्दिष्ट अनुतोष की अधिनियम की धारा 6 के दायरे से परे जाता है। प्रतिवादी द्वारा प्रार्थित कब्जे के लिये डिक्री देने के अलावा विचारणीय न्यायालय ने अतिरिक्त अनुतोष प्रदान किया है जिसके लिये उसके द्वारा अनुरोध भी

नहीं किया गया था जिसमें विचारणीय न्यायालय ने अपिलार्थी को निर्माण हटाने के लिये निर्देषित किया जिसमें कांच का विखण्डन भी सम्मिलित है। इस तरह का अनुतोष विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के प्रावधानों के तहत नहीं दी जा सकती जबकि विषेष रूप से वादपत्र में इसके लिये कोई प्रार्थना नहीं है। [429-ए; बी]

3.विचारणीय न्यायालय ने अतिरिक्त किराया नियंत्रक द्वारा पारित आदेश जिसमें कि बिजली की पुर्नस्थापना हेतु निर्देशित किया गया था उस पर इस प्रकार से निर्भर हुआ जैसे कि उसमें प्रतिवादी की किरायेदारी की पुष्टि की गई हो। विचारणीय न्यायालय इस तथ्य पर ध्यान देने में विफल रहा है कि अतिरिक्त किराया नियंत्रक ने इस प्रश्न पर निर्णय नहीं किया कि क्या प्रतिवादी अपीलार्थी के तहत किरायेदार था। इसके अलावा, विचारणीय न्यायालय ने उप न्यायाधीश के आदेश पर निर्भर होने में गलती की, जो एक गलत धारणा पर आगे बढ़े कि एकाधिक कब्जा अपने आप में किरायेदारी की धारणा को देता है। [425 - डी; 426-ए]

4. ना तो विचारणीय न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय यह धारणा लेने में सही है कि अनाधिकृत निर्माण पूर्ण होने से पहले ही चक्रवृद्वि शुल्क का भुगतान किया जाना चाहिये और निर्माण का भाग बहुत देर बाद में पूरा हो सकता है। इस तरह के अनुमान या धारणा के लिये न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता है। चक्रवृद्वि शुल्क की गणना

केवल अनधिकृत निर्माण के क्षेत्र के आधार पर की जा सकती है और यह तभी संभव है जब इसे पूरा किया जाए। [427-सी-डी]

5. उच्च न्यायालय पुनरीक्षण याचिका को केवल परिसीमा के आधार पर खारिज करने में न्यायसंगत नहीं था। उच्च न्यायालय ने कहीं भी यह नहीं कहा है कि वकील ने अन्य प्रश्नों के संबंध में कोई स्वीकृति दी हो। सिर्फ इसलिए कि उच्च न्यायालय में वकील ने केवल परिसीमा के प्रशन पर बहस करना योग्य समझा, अपीलार्थी का विचारणीय न्यायालय में और उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण के आधार पर रखे गए मामले को दोहराने का अधिकार तब तक नहीं खोता है जब तक कि स्वीकृति या संस्वीकृति नहीं की गई हो। अपीलार्थी या उसके वकील द्‌वारा भी इस उद्‌धेष्य के लिये भी परिसीमा तर्क पर विचार करने के लिए भी यह प्रश्न कि क्या प्रतिवादी एक किरायेदार के रूप में अनन्य कब्जे में था, जैसा कि उसने दावा किया है, बिल्कुल आवश्यक है। [428-ई; एफ; जी]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 5732-33/1999

दिल्ली उच्च न्यायालय सी.आर. संख्या 102/90 और आर.ए.का नंबर 1/ 1998 के निर्णय और आदेश दिनांक 8.12.97 और 8.1.98 से।

दुष्यन्त दवे, अमित ढींगरा और पी.एच. अपीलार्थी की ओर से पारेख।

शिवपूजन सिंह, के.आर. प्रतिवादी की ओर से चावला और के. उप्पल।

न्यायालय का निर्णय श्रीनिवासन, जे. द्वारा सुनाया गया।

1. अनुमति स्वीकृत।

2. यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है कि विनिर्दिष्ट अनुतोष की अधिनियम की धारा 6 के तहत प्रतिवादी द्वारा दायर किया एक संक्षेप दावा विचारणीय न्यायालय द्वारा ऐसे दावों से संबंधित विधि को समझे बिना निस्तारित कर दिया गया है। इसके अलावा, विचारणीय न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध भौतिक साक्ष्य की भी अनदेखी की है जिससे कुछ गलत मान्यताओं को उजागर किया गया है। इससे बढ़कर, विचारणीय न्यायालय ने डिक्री में एक ऐसी राहत दी गई जो विनिर्दिष्ट अनुतोष की अधिनियम की धारा 6 के तहत दावें में नहीं दी जा सकती थी और वास्तव में प्रतिवादी द्वारा अपने दावे में मांगा भी नहीं था। यहां पर सी. पी. सी. की धारा 115 के तहत प्रतिवादी द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को भी बेहतर नहीं माना गया है। इसने उपर्युक्त तथ्यों पर विचार किये बिना विचारणीय न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की है। हमें इस प्रक्रम पर यह बताने में कोई संकोच नहीं है कि दोनों न्यायालयों के निर्णय पूरी तरह से असंतोषजनक हैं यदि विकृत नहीं है तो क्योंकि उक्त मुकदमा पहले से ही 13 साल से अधिक समय से लंबित है इस मामले को नए सिरे से विचार के लिये भेजना उचित नहीं है। इसलिए, हमने इन अपीलों के अंतिम निस्तारण करने के लिये स्वयं मूल अभिलेख

को स्वयं परिष्कृत करके अभिलेख पर उपलब्ध सम्पूर्ण साक्ष्य का अध्ययन किया है।

3. इस प्रतिवादी ने दिल्ली के सीनियर सब-जज कोर्ट के फाइल संख्या 557/86 पर प्रत्यर्थी/ऐपीलेंट और दिल्ली नगर निगम के खिलाफ स्थायी निषेधाज्ञा के लिए याचिका दाखिल की कि उन प्रतिवादियों द्वारा किसी भी तरीके से उसे टक दुकान जो कि परिसर संख्या जी-19, एन.डी.एस.ई. पार्ट-I, न्यू दिल्ली 11049 में स्थित था बेदखली से रोका जाये एवं उस पर किसी तरह का निर्माण करने से रोकने के लिये। उक्त वाद 14.07.86 को दायर की गई थी। वाद पत्र के भाग में वादी ने यह दावा किया गया था कि 12.07.1986 की रात को उसके प्रतिवादी सं. 1 ने स्थानीय पुलिस की सहायता से वादी की सभी सामग्री को टक दुकान से बरामदे में फेंक दिया और बेसमेंट का निर्माण आरंभ किया और टक दुकान कांच से ढका था, जिसको वादी द्वारा अस्वीकार और विरोध किया गया था, लेकिन स्थानीय पुलिस ने वादी की मदद नहीं की और नगर निगम के अधिकारी भी अवैध निर्माण को बढ़ावा देने में और निगम की पूर्व अनुमति के बिना भग्न इमारत के नियमों का उल्लंघन करने में इस प्रतिवादी के साथ थे। यह भी आरोप लगाया गया था कि अवैध इमारत का निर्माण करने और वादी को परिसर से जबरन हटाने और टक की दुकान को अपने निजी कमरे और बेसमेंट में बदलने में प्रतिवादियों की कार्यवाही पूरी तरह से अवैध, मनमाना और किसी भी तरह के औचित्य के बिना थी। उक्त

वाद पत्र के कारण मद संख्या 10 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि उस मुकदमें को दायर करने के लिये वाद कारण रात में 12.07.84 पर उत्पन्न हुआ था। उस दावे के लम्बित रहने के दौरान एक एड अंतरिम निषेधाज्ञा का आवेदन भी था। न्यायालय ने एक तरफा निषेधाज्ञा का आदेश दिया और परिसर का निरिक्षण करने के बाद रिपोर्ट प्राप्त करने के लिये एक स्थानीय आयुक्त को भी नियुक्त किया। आयुक्त द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में उस समय की जा रही किसी भी निर्माण गतिविधि के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया। इसमें यह भी उल्लेख नहीं किया गया हैं कि इसमें प्रतिवादी की टक दुकान या उसका कोई हिस्सा अपीलार्थी के परिसर के अन्दर था। 29.09.86 को न्यायालय ने निषेधाज्ञा का आदेश पारित किया जिसमें अपीलार्थी को कथित वाद के निस्तारण तक प्रत्यर्थी के कब्जे में खलल डालने से रोका गया। वह मुकदमा अभी भी लंबित है।

4. 29.09.86 पर निषेधाज्ञा का आदेश पारित होने से पहले ही, प्रतिवादी द्वारा 11.08.86 को दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 45 के अर्न्तगत अतिरिक्त किराया नियंत्रक दिल्ली के समक्ष आवेदन दायर किया कि अपीलार्थी द्वारा उसके टक दुकान कि बिजली काट दी गई है। अतिरिक्त किराया नियंत्रक, दिल्ली द्वारा एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसमें अपीलार्थी को उक्त दुकान में बिजली बहाल करने को निर्देश दिया गया था। उक्त आदेश 19.08.86 की योग्यता के आधार पर प्रश्न किये बिना कि क्या प्रत्यर्थी अपीलार्थी के तहत किरायेदार था, पुष्टि

की गई। बिजली के पुर्नस्थापना करने के आदेश के खिलाफ, अपीलार्थी द्वारा अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष एक अपील की गई थी। उस अपील को खारिज कर दिया गया और अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर की। जब पुनरीक्षण याचिका लंबित थी तो बिजली कनेक्षन पुर्नस्थापित कर दिया गया था, जिसके बाद प्रतिवादी ने अतिरिक्त किराया नियंत्रक के समक्ष बयान दिया कि बिजली आपूर्ति पुनः संचालित किया गया और याचिका को वापिस लेने पर खारिज कर दिया जाये। प्रतिवादी द्वारा दिये गये बयान के प्रकाश में अतिरिक्त किराया नियंत्रक ने याचिका को खारिज कर दिया। जब उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण याचिका की सुनवाई की तब कोई भी पक्ष उस न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ, स्वभाविक रूप से क्योंकि मुख्य याचिका पहले से वापिस लेने पर खारिज कर दी गई थी लेकिन उच्च न्यायालय ने अपीलीय प्राधिकार के आदेश की पुष्टि करते हुए अभिनिर्धारित किया कि पुनरीक्षण याचिका में कोई योग्यता नहीं थी।

5. यहां तक कि जब प्रतिवादी द्वारा दायर किया गया पहला दावा लंबित था और उनके पक्ष में अंतरिम निषेधाज्ञा का आदेश था, प्रतिवादी ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के तहत अपीलार्थी के खिलाफ उप न्यायाधीश, दिल्ली की फाइल पर सं. 793/86 वाला दूसरा दावा दायर किया, जिससे वर्तमान अपील उत्पन्न होती है। दावे में अनुतोष था कि दावे से संबंधित किरायेदारी संपति का एक हिस्सा जिसे संपति संख्या जी-19,

न्यू दिल्ली साउथ एक्सटेंषन पार्ट-1 न्यू दिल्ली में संलग्न साईट प्लान में लाल रंग में दर्शाया गया था, के कब्जे की डिक्री प्रतिवादी के पक्ष में पारित की जाये। उक्त दावे में दावे का आधार है कि प्रतिवादी सरस्वती देवी द्वारा उसके अधिवक्ता लालचंद गौड के माध्यम से लगभग 01.11.1969 को मासिक किराये 200 रूपये में किरायेदार बन गया था। प्रतिवादी द्वारा यह दावा किया गया था कि अपीलार्थी ने 12.02.1969 को संपति खरीदी और इसलिये वह संपति के मालिक बन गये। और इसलिये उन्होने 12.02.1969 से विधि के प्रावधान से किरायेदार के तौर पर प्रतिवादी अपीलार्थी का किरायेदार बन गया है। दावा अपीलार्थी द्वारा प्रतिवादित किया गया था प्रतिवादी के पूर्ववर्ती हित के आधार पर विचारणीय न्यायालय ने कुल 9 विवाद्यक तय किए थे। विवाद्यक सं. 5 यह था कि क्या वादी को किरायेदार के रूप् में शामिल किया गया था जैसा कि दावे में आक्षेप लगाया गया था। विचारणीय न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से उक्त विवाधक वादी (यहां प्रतिवादी) के खिलाफ तय किया। विवाद्यक सं. 7 यह था कि क्या वादी के पास 22.07.1986 को कथित हिस्से पर कब्जा था और प्रतिवादी द्वारा बेदखल किया गया था जैसा कि वाद में आरोप लगाया गया था। उस विवाद्यक का निष्कर्ष वादी के पक्ष में था। विचारणीय न्यायालय ने दावे में एक डिक्री दी जिसमें निर्धारित किया गया था कि वादी दुकान के पीछे के हिस्से का हकदार हैं ताकि वह अपनी दुकान/खोका के आधे हिस्से को परिसर जी-19, दक्षिण विस्तार भाग-1 नई दिल्ली के अंदर ले जा सके और आधा बरामदे के हस्से में टक की दुकान

को अंदर रखने के लिए जिसको वादी द्वारा बाधा को दूर करने के बाद दिया जाना है। इसमें संलग्न स्थल योजना के अनुसार आदेश पारित होने के 15 दिनों के भीतर प्रतिवादी द्वारा वादी को नहीं सौपे जाने पर कांच को तोड़ना शामिल है।

6. डिक्री से व्यथित होकर अपीलार्थी ने विधि में उपलब्ध एक मात्र उपाय के रूप में धारा 115 सी.पी.सी. के तहत उच्च न्यायालय की ओर प्रस्तावित किया। उच्च न्यायालय ने कहा कि उसके समक्ष एकमात्र तर्क यह था कि दावा परिसीमा से वर्जित था। उस प्रश्न पर अपीलार्थी के खिलाफ निर्णय लेते हुए उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया। अपीलार्थी ने उक्त अपील प्रस्तुत की गई। जब विशेष अनुमति याचिका में 20.03.1998 पर नोटिस का आदेश दिया गया था, तो इस न्यायालय ने एक आदेश पारित किया कि उस तारीख को जैसी स्थिति है उसकी यथास्थिति बनाए रखी जाएगी। जब दावे की सुनवाई 23.03.1999 पर हुई, तो इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित कियाः

> “चूंकि एक विवाद उठाया गया है कि क्या वाद पत्र के मद सं.1 में उल्लिखित तिथि 01.11.1969 या 01.11.1968 जिसके लिए मूल अभिलेख आवश्यक है जिसको अभी तक तलब नहीं किया गया है, हम निर्देश देते हैं रजिस्ट्री चार सप्ताह के अन्दर मूल अभिलेख को उच्च न्यायालय या

अधीनस्थ न्यायालय से, जहां भी उपलब्ध हो प्राप्त करे।

पांच सप्ताह के बाद दावे को सूचीबद्ध करें। ”

7. उक्त आदेश के अनुसरण में इस न्यायालय में पूर्ण अभिलेख आया और हमें उसी को देखने का लाभ मिला है।

8. श्री दुष्यंत दवे, अपीलार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा हमारे सामने निम्नलिखित तर्क रखे गएः

(i) विचारणीय न्यायालय ने प्रतिवादी के किरायेदारी का दावा के विरूद्व पाये जाने पर अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर उसी स्तर पर विचार करने मे विफल रहा। अन्य शब्दों में, उसका तर्क है कि एक बार यह दावा का आधार जो कि प्रतिवादी द्वारा किया गया कि वह अपीलार्थी के पूर्ववर्ती हित के किरायेदार के रूप में उक्त संपति का कब्जा प्राप्त किया है , उसके खिलाफ माना जा चुका है, न्यायालय को यह समझना चाहिए था कि प्रतिवादी कभी भी उस संपति पर किरायेदार नहीं था और परिणामस्वरूप उसके कब्जे में भी वह नहीं हो सकता है। इस बात को सही रूप से इंगित किया गया हैं कि प्रतिवादी के पास वैकल्पिक अभिवचन नहीं था यदि अपीलार्थी के पूर्ववर्ती हित के अधीन किरायेदारी को उसका मामला उसके विरूद्व पाया जाता है, तो उसे अपीलार्थी द्वारा संपति खरीदे जाने के बाद की तारीख को अपीलार्थी का किरायेदार माना जाना चाहिये। इस तरह की असंगत वैकल्पिक तर्क प्रतिवादी द्वारा नहीं उठाया जा सकता एव तथ्यों के प्रकाष में उसे उठाया भी नहीं गया है।

(ii). दूसरा विवाद्यक यह है कि प्रतिवादी की बेदखली वर्ष 1984 में पूर्ण हो गयी थी एवं दावा नवम्बर 1986 में दायर किया गया जो कि स्पष्ट रूप से परिसीमा से वर्जित था। इस संबंध में यह प्रस्तावित है कि दोनों न्यायलयों ने गलत धारणा के आधार पर अनाधिकृत निर्माण की नियामानुसार भुगतान 22,972 रूपये के प्रमाण को त्रुटिपूर्ण तरीके से खारिज किया है, ध्यान में नहीं रखा कि महत्वपूर्ण शुल्क और समाकरण शुल्क की गणना के उद्धेश्य से, अनाधिकृत निर्माण के कुल क्षेत्र की गणना को नगर निगम दिल्ली द्वारा की जानी चाहिए और केवल उस आधार पर 17.12.1984 को समाकरण शुल्क वसूला गया था। विद्वान अधिवक्ता का तर्क था कि उसके द्वारा प्रस्तावित दस्तावेज का स्वयं में काफी प्रमाण है कि 1984 में निर्माण पूरा हो चुका था जिसका मतलब है कि प्रतिवादी कब्जे में नहीं हो सकता और उसके बाद भी कब्जे में नहीं था।

(iii). तीसरा तर्क यह है कि इस पर कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि जब प्रतिवादी ने कब्जे के लिये दूसरा मुकदमा दायर किया था तब इससे पहले ही इसने निषेधाज्ञा के लिये एक मुकदमा दायर किया जैसे कि वह कब्जे में था और उसे अंतरिम निषेधाज्ञा का आदेष भी प्राप्त हुआ। यदि प्रतिवादी तथ्यात्मक रूप से कब्जे में होता तो जब उसने निषेधाज्ञा का आदेश प्राप्त किया तो वह अविलम्ब अपीलार्थी के विरूद्य अवमानना के आवेदन के साथ उस न्यायालय में आता जहां प्रथम दावा लम्बित है जो

कि कथित रूप से आज भी लम्बित है। वैकल्पिक रूप् से , यदि प्रतिवादी को पहले मुकदमें में निषेधाज्ञा का आदेश प्राप्त होने के बाद बेदखल कर दिया गया था तो वह अनुतोष में संसाधन करने के लिये आवेदन कर सकता था और दूसरा मुकदमा दायर करने के बजाय अनुतोष को कब्जा प्राप्त करने में परिवर्तित कर सकता था।

(iv) चौथा तर्क यह है कि पहले वाद व दूसरे वाद में अंकित अभिवचनों के बीच भोतिक विसंगतियां है जिसको विचारणीय न्यायालय द्वारा पूरी तरह से अनदेखा व नजर अंदाज कर दिया गया है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तावित किया जाता है कि विचारणीय न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा उक्त कथित प्रमुख बिन्दुओं पर विचार नहीं किया गया और परिणाम स्वरूप दोनों निर्णय दूषित हो जाते हैं और अपास्त किए जाने योग्य होते है।

9. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया है कि उच्च न्यायालय में अपीलार्थी द्वारा एक मात्र प्रश्न परिसीमा का था और इस प्रक्रम पर इन अपीलों में विवाद के दायरे को बढाने का अधिकार नहीं है । विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि विचारणीय न्यायालय में भी परिसीमा का कोई मुदा नहीं था। हालांकि, उन्होने उस तर्क पर जोर नहीं दिया क्योंकि उन्होने पाया कि विवादक सं. 7 प्रासंगिक है जिसमें विचारणीय न्यायालय द्वारा परिसीमा के प्रश्न पर विचार किया है और उच्च न्यायालय भी इस स्तर पर आगे बढा कि विवाद्यक संख्या 7

में परिसीमा का प्रश्न सम्मिलित है। प्रतिवादी कि लिये विद्वान अधिवक्ता का दूसरा तर्क यह है कि प्रतिवादी की बेदखली केवल जूलाई या अगस्त 1986 में थी और वह कानून की उचित प्रक्रिया में नहीं था और परिणाम स्वरूप अपील खारिज की जानी चाहिए।

10. हमने पहले ही याचिका में दिये गये विशिष्ट तथ्य का उल्लेख किया है कि प्रतिवादी एक सरस्वती देवी के वकील लाल चंद गौड के माध्यम से 1.11.1969 को 200 रूपये के मासिक किराये पर किरायेदार बन गया है। वाद पत्र के इसी अनुच्छेद में यह कहा गया है कि अपीलार्थी ने उक्त संपति को 12.02.1969 को खरीद लिया और परिसर का मकान मालिक बन गया जिसके बाद प्रतिवादी विधि के संचालन द्वारा अपीलार्थी का किरायेदार बन गया। इस पर उक्त कथन असंगत है और इसका कोई अर्थ नहीं हैं। यह सत्यापित करने के लिये कि क्या तारीख 1.11.69 मूल भाग में पायी गयी थी इस न्यायालय ने मूल अभिलेख को मंगाया और अब यह देखा गया है कि मूल वाद में बिना किसी संदेह के उसी तारीख का उल्लेख किया गया है। यहां तक कि एक क्षण के लिए यह माना जाए कि तारीख गलती से 1.11.68 थी जैसा कि अब तर्क दिया जाना चाहिए था परन्तु इसके समर्थन में कोई सबूत नहीं होने के कारण विचारणीय न्यायालय ने उस याचिका के खिलाफ निर्णय सही पाया है। पी.डब्ल्यू. 1 के रूप् में प्रतिवादी के साक्ष्य का अवलोकन करे तो वह स्वयं यह दिखाने के लिये पर्याप्त है कि उसके अपीलार्थी के पूर्ववर्ती हित के तहत किरायेदारी

का मामला बिल्कुल मिथ्या हैं। यहां तक कि मुख्य परीक्षण में पी. डब्ल्यू. 1 ने स्वीकार किया है कि उसने कभी श्रीमति सरस्वती को नहीं देखा था और लालचंद ने उसे बताया था कि वह परिसर की मालिक है। यह भी उनका बयान है कि पहली बार लालचंद से दुकान को किराये पर लेते समय मिला था और उसके बाद वह उक्त लालचंद से नहीं मिला। उनके अनुसार वे प्रबन्धक को किराया देते थे लेकिन उन्हें प्रबंधक का नाम याद नहीं था। यह स्वीकृत है कि किराये के तर्क के समर्थन में कोई पटा विलेख या किराया नोट नहीं है। विचारणीय न्यायालय ने सही फैसला दिया है कि प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किरायेदारी का मामला साबित नहीं हुआ है।

11. लेकिन दुर्भाग्यवश, विवाद्यक सं.8 पर चर्चा करते समय यह मान लिया है कि उसने अपने निर्णय में पहले एक निष्कर्ष पहले नही तो 1972 के बाद से दिया था कि प्रतिवादी एक टक की दुकान के संबंध में एक किरायेदार था जो आधा दीवार के बाहर और आधा दीवार के अंदर था। हमने इस तरह के निष्कर्ष के लिये विचारणीय न्यायालय के पूरे फैसले की व्यर्थ खोज की है। संबंधित विवाद्यक सं. 5 पर प्रतिवादी के तर्क को नकारते हुए कि प्रतिवादी अपीलार्थी के पूर्ववर्ती हित के तहत उसका किरायेदार है विचारणीय न्यायालय ने यह पाया कि प्रतिवादी द्वारा अभिलेख पर लाया गया साक्ष्य सबसे पहले 1972 से संबंधित था और उससे पहले कोई सबूत नहीं था। यह किसी भी कल्पना से यह निष्कर्ष नहीं होगा कि प्रतिवादी 1972 में अपीलार्थी के अधीन किरायेदार बन गया था।

किसी भी स्थिति में ऐसा निष्कर्ष न्यायालय द्वारा नहीं दिया जा सकता था क्योंकि यह प्रतिवादी का मामला नहीं है कि वह अपीलार्थी द्वारा संपति खरीदने के बाद सीधे अपीलार्थी के तहत किरायेदार बन गया प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत दावे में एक मात्र यह मामला रखा गया कि वह अनुबंध द्वारा पूर्व मालिक के तहत एक किरायेदार बन गया और विधि के संचालन द्वारा जब अपीलार्थी पूर्व मालिक से संपति खरीदी। अपीलार्थी के तहत किरायेदार बन गया।

12. इस प्रकरण पर हम गम्भीर त्रुटियों जो कि विचारणीय न्यायालय द्वारा की गई व उच्च न्यायालय द्वारा नजरअंदाज कर दी गई को निर्धारित करना बेहतर समझते है। लिखित कथन में अपीलार्थी का यह विशिष्ट मामला है कि इसमें प्रतिवादी कभी भी उसके अधीन या उसके पूर्ववर्ती हित के अधीन किरायेदार नहीं था और प्रतिवादी को अपने भाई अजीत प्रसाद या अन्य रिश्तेदारों के माध्यम से दैनिक मजदूरी पर पान आदि बेचने के लिये लगया गया था। यह भी उनका तर्क है कि प्रतिवादी के अलावा अन्य व्यक्ति भी इसी तरह दैनिक मजदूरी पर लगे हुए थे। हालांकि, यह भी दावा किया था कि प्रतिवादी नियमित रूप से उपस्थित नहीं था और जब उसकी सेवाएं नहीं ली गई थी तो उसने अपीलार्थी के भाई अजीत प्रसाद से अनुरोध किया कि उसे दैनिक मजदूरी पर पान वाला के रूप में नियुक्त करके अंतिम मौका देने की सिफारिश की। यह लगभग जूलाई 1986 की बात है। उसकी स्थिति पर दया करते हुए और अजीत

प्रसाद के आश्वासन कि प्रतिवादी ठीक से व्यवहार करेगा अपीलार्थी ने उसकी सेवाएं प्राप्त की। इसके तुरन्त बाद प्रतिवादी ने किरायेदार होने का दावा करते हुए निषेधाज्ञा का पहला मुकदमा दायर किया। अपीलार्थी की इस विषिष्ट याचिका का समर्थन उसने अपने साक्ष्य और डी. डब्ल्यू. 3 के रूप् में अजीत प्रसाद के साक्ष्य द्वारा किया गया था। याचिका की शुद्वता और साक्ष्य की ग्राहयता को विचारणीय न्यायालय द्वारा कहीं भी अपने निर्णय में व्यक्त नहीं किया गया हालांकि यह तथ्यों के कथन के हिस्से के रूप में उल्लेखित किए गये है। विचारणीय न्यायालय द्वारा उक्त प्रश्न पर कोई विवाद्यक तक नहीं बनाया गया। विचारणीय न्यायालय ने जब प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए किरायेदारी के मामले को स्पष्ट रूप से खिलाफ पाया तो उसे इस बात पर विचार करना चाहिए था कि अपीलार्थी की याचिका सही थी या नहीं। यदि न्यायालय उक्त याचिका अपीलार्थी के पक्ष में पाता है तो विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के तहत प्रतिवादी द्वारा दायर वाद चलने योग्य नहीं था क्योंकि वह परिसर के कब्जे में होने का दावा नहीं कर सकता था। किसी सेवक या अभिकर्ता का कब्जा उसके स्वामी या प्रधान का होता है, जैसा भी मामला हो सभी उद्धेश्यों के लिये होता है और सेवक या अभिकर्ता ऐसे कब्जे के आधार पर स्वामी या प्रधान के खिलाफ मुकदमा नहीं कर सकता है। (दक्षिणी रोडवेज लि. मदुराई बनाम एस.एम. क्रष्णन, [1989] 4 एससीसी 603, संदर्भित किया) यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने मामले के इस पक्ष को पूरी तरह से अनदेखा किया है।

13. विवाद्यक सं. 6 व 7 पर विचार करते हुए विचारणीय न्यायालय अतिरिक्त किराया नियंत्रक द्वारा दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 45 के तहत प्रतिवादी द्वारा दायर आवेदन में बिजली की पुर्नस्थापना का पारित आदेश पर निर्भर रहे और इस तरह आगे बढे कि उस न्यायालय द्वारा प्रतिवादी की किरायेदारी को निर्धारित किया हो। विचारणीय न्यायालय इस तथ्य पर ध्यान देने में विफल रहा है कि अतिरिक्त किराया नियंत्रक ने इस प्रश्न का निर्णय नहीं लिया है कि क्या प्रतिवादी अपीलार्थी के अधीन किरायेदार था। विचारणीय न्यायालय ने उक्त न्यायधीश, प्रथम श्रेणी द्वारा प्रथम मुकदमे 557/86 में पारित अंतरिम निषेधाज्ञा के आदेश का भी संदर्भ दिया है और आगे की कार्यवाही इस आधार पर की है कि प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किरायेदारी के मामले को उक्त आदेश में बरकरार रखा गया था। विचारणीय न्यायालय ने इस बात की अनदेखी की है कि उक्त आदेश में, उप न्यायाधीश प्रथम श्रेणी में केवल प्रथम दृष्ट्या विचार व्यक्त किया है। और किसी विशिष्ट साक्ष्य के आधार पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा है। उप न्यायाधीश के आदेश में प्रासंगिक अवलोकन इस प्रकार है-

> “प्रथमदृष्टया वादी के अनन्य अधिकार से पता चलता है कि वह टक शॉप अलमीरा के सम्बन्ध में एक किरायेदार है। अनन्य कब्जा अपने आप मे किरायेदारी की धारण को जन्म

देता है और इस धारण का खण्डन करने के लिये रिकॉर्ड पर

कुछ भी नहीं है। ”

प्रथम दृष्ट्या वादी के अनन्य अधिकार से पता चलता है कि वह टक दुकान/अलमिरा के संबंध में एक किरायेदार है। अनन्य कब्जा अपनेआप में ही किरायेदारी की धारणा को

14. इस तथ्य के अलावा भी उप न्यायाधीश ने उक्त मामले को प्रथम दृष्टया देखा है यह भी देखा गया है कि वह विधि में स्थिति की गलत धारणा पर आगे बढा है। अनन्य कब्जा स्वयं में किरायेदारी की धारणा को उजागर नहीं करता है एवं उप न्यायाधीश द्वारा इस संदर्भ में दी गई राय पूर्ण रूप से गलत है।

परिणामस्वरूप, विचारणीय न्यायालय द्वारा इस विचारण में उप न्यायाधीश के उक्त आदेश पर निर्भर रहकर त्रुटि की है।

15. विचारणीय न्यायालय ने 1972 की गृह कर विभाग की कुछ निरीक्षण रिपोर्ट पर निर्भर रह कर यह अभिनिर्धारित किया है कि टक की दुकान नंबर जी-19 एनडीएसई भाग - 1 परिसर के अन्दर थी और वह लकडी की अलमारी पहले दीवार के अन्दर था, जिसे बाद मे दूर धकेल दिया गया था। उक्त कोई भी तथ्य इस मामले के प्रासंगिक नही है। दो महत्वपूर्ण प्रश्न यहै कि क्या प्रतिवादी परिसर के अनन्य कब्जे मे था जैसा कि उसने दावा किया था और क्या उसे मुकदमे की तारीख से छः महीने की अवधि के भीतर बेदखल कर दिया गया था। दुर्भाग्यवश, विचारण

न्यायालय ने उक्त प्रश्नो के सम्बन्ध मे प्रासंगिक सामाग्रियो की अनदेखी की है और नजरअंदाज किया कि प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत विशिष्ट मामला स्वयं नकारात्मक है।

16. पहले मुकदमे 557/86 में नियुक्त स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट में प्रतिवादी द्वारा प्रथम दावा के वाद पत्र व दुसरे दावा के वाद पत्र में किए गए कथनों को खारिज कर दिया गया है। यहाँ यह उल्लेख करना सार्थक है कि पूर्ववर्ती वाद में वाद पत्र के मद संख्या 5 में दिए गए कथन यह साबित करने के लिए पर्याप्त हैं कि उन्हें पहले ही बेदखल कर दिया गया था और फिर भी उन्होंने निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना ऐसे की जैसे कि वह उसके कब्जे में थे। हमारे लिए यह अनावश्यक है कि हम दोनों वाद पत्रों में कथनों के बीच भौतिक विसंगतियों को इंगित करने का अभ्यास करें। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि प्रतिवादी कोई स्पष्टीकरण देने में विफल रहा है कि क्यों पहले उसने मुकदमे के वाद पत्र की मद संख्या - 10 में उसने तर्क दिया था कि वाद कारण 1984 में उत्पन्न हुआ था। हमने श्री शिव पूजन सिंह जो कि प्रतिवादी की ओर से आये विद्वान अधिवक्ता है, उनसे एक विशिष्ट प्रश्न पूछते हैं, कि क्या उनके पास इसके लिये कोई स्पष्टीकरण है, उसके पास उक्त प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था।

17. यह इंगित करना महत्वपूर्ण है कि वर्तमान वाद 793/86 के वाद पत्र के मद संख्या 10 में जिस तारीख को वाद कारण उत्पन्न हुआ कहा जाता है, उसे मूल रूप से 12.07.84 के रूप में टाईप किया गया था,

लेकिन बाद में स्याही मे 4 को 6 के रूप में सही किया गया है। इसके लिये भी कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

18. प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने हाउस टैक्स रजिस्टर से कुछ उद्धरणों पर कडे रूप से निर्भर रहे और प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी का नाम विशेष रूप से उसमें किरायेदार के रूप में उल्लेख किया गया है।

हम पाते हैं कि पहली बार दिनांकित 19.3.1986 दस्तावेज़ में प्रतिवादी का नाम कॉलम में, 'किरायेदार या अधिभोगकर्ता' में उल्लेख किया गया है और पिछले रजिस्टरों में किसी भी नाम का उल्लेख नहीं किया गया था। कॉलम में केवल "पानवाला" लिखा था। सर्वसम्मति से दोनो पक्षों के मध्य विवाद 1984 से पैदा हो गया है और यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रतिवादी ने अपना नाम विवाद उत्पन्न होने के बाद गृह कर विभाग द्वारा बनाये गये रजिस्टर में दर्ज कराया था। दावे के सभी अभिलेखों के अवलोकन पर, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि प्रतिवादी बतौर किरायेदार कभी भी अनन्य कब्जे में नहीं था और भले ही वह कब्जे में था, परन्तु 1984 में वह बेदखल हुआ जब अपीलार्थी ने एक निर्माण किया जो नगर निगम द्वारा अधिकृत नहीं था और उसने चक्रवृद्धि शुल्क का भुगतान किया। न तो विचारणीय न्यायालय ना ही उच्च न्यायालय का यह विचार सही है कि अनाधिकृत निर्माण के पूरा होने से पहले ही चक्रवृद्धि शुल्क का भुगतान किय होगा और निर्माण का एक हिस्सा बहुत

बाद में ही पूरा हुआ होगा। इस तरह के अनुमान या धारणा को प्रामाणिक नहीं ठहराया जा सकता।

19. जैसा कि पहले बताया गया है, चक्रवृद्धि शुल्क की गणना केवल अनधिकृत निर्माण के क्षेत्र के आधार पर की जा सकती है और यह तभी संभव है जब इसे पूरा किया जाए। अपीलार्थी या उसके गवाहों के यह सुझाव नहीं दिया कि उन्होंने 1984 में किसी समय अनधिकृत निर्माण शुरू किया और इसे बहुत बाद में 1986 में पूरा किया हो। अपीलार्थी के गवाहों को इस तरह के किसी भी सुझाव के अभाव में और प्रतिवादी की ओर से ऐसे किसी भी साक्ष्य के अभाव में, निचले न्यायालय यह मानने में उचित नहीं हैं कि चक्रवृद्धि शुल्क का भुगतान अपीलार्थी के मामले का समर्थन नहीं करता है कि अनधिकृत निर्माण 1984 मे पूर्ण किया गया था।

20. उच्च न्यायालय ने अपने फैसले के मद संख्या 13 में निम्नलिखित टिप्पणी की हैः

> "मेरे विचार में, केवल इसलिए कि दिसंबर 1984 में चक्रवृद्धि शुल्क का भुगतान किया गया था, यह स्थापित नहीं होगा कि बेसमेन्ट का निर्माण तब पूरा हो गया था। बेसमेन्ट के पूरा होने के संबंध में कोई पूर्णता प्रमाण पत्र या अन्य साक्ष्य अभिलेख पर नहीं रखा गया है। प्रतिवादी को बेदखल करने का कथित कार्य था एक कांच की फिक्सिंग जो प्रतिवादी की दुकान को बरामदे में धकेल देती है। यह

नवीनीकरण के समय किया जा सकता था, भले ही बेसमेन्ट की मूल संरचना पूरी हो गई हो।"

उपरोक्त अवलोकन पूरी तरह से अनुचित है क्योंकि यह प्रतिवादी का मामला नहीं है कि बेसमेन्ट की मूल संरचना पहले पूरी की गई थी और एक कांच की फिक्सिंग बहुत बाद में हुई थी। वाद पत्र में किए गए कथन मामले के इस पहलू पर मौन है। वाद पत्र मे प्रतिवादी को बेदखल करने की निश्चित दिनांक कहीं अंकित नहीं है।

21. जबकि उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी के साक्ष्य को पीडब्ल्यू - 1 का सन्दर्भ लिया है, परन्तु उसके द्वारा विचारणीय न्यायालय द्वारा दिये गये निष्कर्ष कि प्रतिवादी ने किरायेदारी के मामले को साबित नहीं किया है, प्रतिवादी के प्रकाश मे अपीलार्थी के पक्ष मे साक्ष्य पर विचार करने का विकल्प नही चुना है। हमें यह बताते हुए खेद है कि उच्च न्यायालय अपना कर्तव्य निभाने में विफल रहा है।

22. जिस तरह से प्रतिवादी कम समय के भीतर अलग-अलग मंचों पर परस्पर विरोधी अभिकथन कर अलग-अलग कार्यवाही शुरू कर रहा है, वह दर्शाता है कि प्रतिवादी न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग कर रहा है और स्पष्ट मंशा से अदालत में नहीं आया है। वह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम के तहत कोई न्यायसंगत राहत पाने का हकदार नहीं है।

23. एकमात्र अन्य तर्क है कि प्रतिवादी के वकील का था जिस पर विचार किया जाना है, यह है कि अपीलार्थी विवाद का दायरा बढाने के लिये खुला नहीं है क्योकि अपीलार्थी के वकील ने उच्च न्यायालय के समक्ष परिसीमा के तर्क पर अपने तर्क को सीमित कर दिये हैं। उच्च न्यायालय ने कहीं भी यह नहीं कहा है कि प्रतिवादी के वकील ने अन्य प्रश्नों के संबंध में कोई स्वीकृति दी थी। सिर्फ इसलिए कि उच्च न्यायालय में वकील ने केवल परिसीमा के प्रश्न पर बहस करना उचित समझा, इसलिए विचारणीय न्यायालय में और उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण के आधार पर रखे गए मामले को दोहराने का अपीलार्थी का अधिकार तब तक नहीं खोता है जब तक कि अपीलार्थी या उसके वकील द्वारा कोई रियायत या स्वीकार नहीं किया गया था। लेकिन, वास्तव में, हमारे सामने विवाद का दायरा किसी भी तरह से नहीं बढ़ाया गया है। यहाँ तक कि परिसीमा की याचिका पर विचार करने के उद्देश्य से भी, यह प्रश्न कि क्या प्रतिवादी एक किरायेदार के रूप में अनन्य कब्जे में था, जैसा कि उसने दावा किया है, पर विचार करना बिल्कुल आवश्यक है। एक बार जब किरायेदारी का मामला प्रतिवादी के खिलाफ पाया जाता है, तो यह प्रतिवादी को स्थापित करना था कि उसका कब्जा अनन्य कब्जा है न कि अपीलार्थी की ओर से। यह प्रश्न कि क्या विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के तहत प्रतिवादी को अनुतोष दिया जा सकता है, उस मुद्दे पर निर्भर करता है। प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किरायेदारी की एकमात्र याचिका को

साबित करने में विफल रहने के कारण इस मुकदमे में कोई अनुतोष पाने का अधिकारी नहीं है।

24. जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई वाद पत्र में अंकित प्रार्थना और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के दायरे से परे है। प्रतिवादी द्वारा अनुरोध के अनुसार कब्जे के लिये एक डिक्री देने के अलावा, विचारणीय न्यायालय ने एक अतिरिक्त अनुतोष प्रदान की है जिसके लिये उसके द्वारा अनुरोध नहीं किया गया था जिसमें विचारणीय न्यायालय ने अपीलार्थी को निर्देश दिया है कि वह कांच को हटाने सहित उसके द्वारा बनाये गये निर्माण को हटा दे। विशेष रूप से विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के प्रावधानो के तहत ऐसा अनुतोष नहीं दिया जा सकता है, जब वाद में इसके लिये कोई प्रार्थना न हो।

25. परिणामस्वरूप, अपीलों की अनुमति दी जाती है। निर्णय और निचली न्यायालयों की डिक्री को अपास्त कर दिया गया है। अधीनस्थ न्यायाधीश की फाइल पर मुकदमा सं. 793/86 खारिज कर दिया जाता है। पक्षकार अपना-अपना खर्च वहन करेंगे।

अपीलों की अनुमति दी गई।

एसवीके.

यह अनुवाद आर्टिफिशल इंटेलिजेन्स टूल सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी दीपिका सिंह (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए , निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा |